विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१
पोस्टल रजि. नं. NS (M)-16/84

वर्ष १४ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२८ • आश्विन पूर्णिमा [शक] • दि. ९-१०-१९८४ • अंक ४

हर्ष - उद्गार

जब कोई साधक विपश्यनामें गंभीरतासे प्रवृत्त होता है तो बहुधा उसे बहुत तप्त संवेदनाओंमेंसे गुजरना पड़ता है। यह ताप मौसमका ताप नहीं होता। क्योंकि बहुत बार देखा गया है कि शीत ऋतु में अथवा हिमालयमें लगे शिविरोंमें लोग कम्बल व रजाइयाँ ओढ़-ओढ़कर साधना करने बैठते हैं, परन्तु विपश्यना आरंभ करनेके बाद अनेकोंको इतनी तप्त गर्मी महसूस होती है कि उन्हें कम्बल और रजाई ही नहीं, तन पर के कुछ कपड़े भी उतारने पड़ जाते हैं। यह शरीरका भी ताप नहीं है। क्योंकि साधक को इसका तापमान शरीरके तापमानसे कहीं अधिक महसूस होता है। शरीरका तापमान हो तो लगभग वही तापमान सतत बना रहना चाहिए। पर ऐसा नहीं होता। कुछ देर के लिए किसी किसी साधकको यूं लगता है जैसे उसका सारा शरीर जलती भट्ठीमें झोंक दिया गया है। साधक उस समय साधना बंद कर दे, बहिर्मुखी हो जाय, किसी अन्य प्रवृत्तिमें लग जाय तो सारी तपन दूर हो जाती है। साधना शुरू करते ही फिर वैसी ही तपन महसूस होने लगती है। समझदार गंभीर साधक हो तो ऐसे समय इस तापके प्रति अनित्य बोध और तटस्थभाव बनाए रखता है। इसके प्रति जरा भी प्रतिक्रिया नहीं करता तो देखता है कि देर-सबेर सारी तपन समाप्त हो जाती है। परिणामतः बहुत शीतलता महसूस होती है। ऐसी आन्तरिक शीतलता, जैसी पहले कभी नहीं अनुभव की। न तो यह तपन शरीरकी स्वाभाविक तपन है और न मौसम की और न ही यह शीतलता शरीर की स्वभाविक शीतलता है और न मौसम की। यह पूर्ण संचित मनोविकारोंका तपन है जो कि तटस्थ स्वभाव वाली विपश्यना साधना के कारण उभरता है और तटस्थता बनाए रखें तो सहजभावसे उसका निरोध हो जाता है, उपशमन हो जाता है। विपश्यनाकी समता से ही इन पूर्व कर्म संस्कारोंकी उदीर्णा होती है, निर्जरा हो जाती है, इनका क्षय हो जाता है। इन कर्म संस्कारोंके तापकी जितनी निर्जरा हो जाय, उतनी-उतनी सुख-शांति साधक महसूस करता है। "उपज्झित्वा निरुज्झन्ति ते सं वूपसमो सुखो"

साधनाके दौरान अनेक साधकोंको इस भीतरी तपन के मारे सारी रात नींद नहीं आती। साधक नासमझ होता है तो इसकी वजहसे व्याकुलता पैदा करके अपने आपको अनिद्र रोगी बना लेता है। परन्तु यदि समझदारीसे तटस्थभाव बनाए रखता है तो यही अन्तरताप उसके कल्याणका कारण बन जाता है। पूर्व संचित कर्मबीजोंको इस अन्तरतपसे भून लेता है। उनके अत्यधिक दुखद परिणामोंसे सदा के लिए छुटकारा पा लेता है। और जब इस अन्तरताप के समापन पर शीतलता महसूस होती है तो साधक सुखकी नींद सोता है। ऐसा अनुभव अनेक साधकोंको होता ही रहता है।

जो साधक सभी कर्मकांडो और दार्शनिक मान्यताओंके जंजालों को छोड़कर धीरज के साथ अनन्यभावसे विपश्यना के अभ्यास में लग जाता है वह और भी गहराइयों से अपने अन्तर्मन में दबे हुए गहरे संस्कारोंको उभारकर उनका उपशमन करते हुए इंद्रियातीत अवस्थाकी अनुभूति कर लेता है। अनित्यधर्मा इंद्रियजगतको पार कर नित्य धर्मा निर्वाण सत्यका साक्षात्कार कर लेता है। वाण कहते हैं जलनेको। निर्वाण माने वह अवस्था जहाँ तृष्णाकी जलन समाप्त हो जाय। ऐसी अवस्थामें जो शीतलताकी अनुभूति होती है वह सामान्य शीतलतासे कई गुना अधिक होती है। ऐसे "तण्हानं खयमज्झगा" की अवस्थाको पहुँचे हुए साधक के लिए ही भगवान बुद्धने शीतलीभूत या शीतीभूत जैसे शब्दका प्रयोग किया है। उनके लिए भव तापका नामोनिशान नहीं रहा।

ऐसी ही एक मुक्त, अर्हन्त अवस्था प्राप्त भाग्यशालिनी साधिका की कथा। भगवानके जीवनकालकी एक घटना।

धम्म वाणी

अप्पमाद रतो भिक्खु पमादे भयदस्मि वा।
सञ्ञोजनं अणुं थूलं डहं अग्गी 'व गच्छति॥

धम्मपद–२/८.

जो साधक प्रमाद से भय खाता है और अप्रमाद में रत रहता है वह अपने छोटे और बड़े सभी कर्म-संस्कारों के बंधनों को आग की भांति जलाते हुए चलता है।

लिच्छवी गणराज्यके वैशाली नगरमें रहनेवाली एक क्षत्रिय कुलकी सद्‌गृहणी। धर्म की कल्याणकारिणी वाणी सुनकर मनमें वैराग्य जागा परन्तु पतिकी मनोनुकूलता न देखकर गृहस्थ में रहते पत्नी धर्म ही निभाती रही। एक दिन रसोई घरमें भोजन पकाते हुए जिस हंडिया में शाक पकाना था उसमें तरल झोल डालना भूल गयी। सूखा शाक, गर्म पेंदे से लगकर जल-भून गया। इसे देखकर उसके मनमें एकाएक बड़ा धर्म संवेग जागा। अनित्य हैं, अनित्य हैं, सारे संस्कार अनित्य हैं। इसमें आस्वादनका रस न डाला जाय तो ये भी इस शुष्क शाककी भांति जल-भुनकर नष्ट हो जायेंगे। अब काम-भोगका रसास्वादन असह्य हो उठा। पत्नीमें तीव्र वैराग्यकी भावना जागी देख पतिने इस बार उसका साथ दिया। उसे प्रसन्नतापूर्वक भगवानके आश्रममें छोड़ आया। महाप्रजावती गौतमीने उसे प्रव्रज्या दी। विपश्यना सिखाई। दृढ़ पराक्रमसे साधना करती हुई वह साधिका कृतकृत्य हुई, अर्हंत हुई वीतराग हुई। साधनाके दौरान कामरागके संस्कारोंकी जो तपन जागी थी उसका उमशमन हुआ। आन्तरिक शीतलता प्राप्त हुई। पहले जो रात रात भर बेचैनी रहती थी, वह अब दूर हुई।

भगवानने उसके पूर्व की तथा वर्तमानकी स्थितिको देखकर यह जो आह्लादकारी उदान वचन कहे, वही यह साध्वी बार-बार उल्लासपूर्वक दुहराया करती थी।

"सुखं सुपाहि थेरिके, कत्वा चोळेन पारुता।
उपसन्तो हि ते रागो, सुक्खडाकं व कुम्भियं॥"

स्थविरके! तू सुखकी नींद सो। अपने हाथसे बुने हुए वस्त्रको ओढ़कर तू परम शांति लाभ कर। क्योंकि कड़ाई में पड़े शुष्क शाककी तरह तेरे सारे राग अब दग्ध हो गए हैं, शांत हो गए हैं।

भगवानकी यह कल्याणकारिणी हर्ष वाणी सभी साधक साधिकाओंके लिए प्रबोधनका कारण बने और सभी अपने अपने संचित संग्रहित संस्कारोंको विपश्यना साधनाकी आग द्वारा तप्त करके परम शांतिकी अनुभूति प्राप्त करें। दुखोंसे सदाके लिए छुटकारा पा लें। यही हमारे मंगल का उपाय है।

मंगल मित्र,
स. ना. गो.

ध्यान साधना या मेडीटेशन क्यों?

(पुष्पा तोषणीवाल)

आजके इस भागाभागीके अप्राकृतिक जीवनमें अशांत व उद्विग्न मन को शांत व स्वस्थ बनानेके लिए विपश्यना ही एक उत्तम उपाय है।

लगभग २५२२ साल पहले राजकुमार सिद्धार्थ का जन्म कपिल वस्तुके लुम्बिनीवन में हुआ। इस दुनियांके दुःखोंको देखकर उन्हें संसारसे विरक्ति हुई और वे सच्चे सुख की खोजमें निकल पड़े। अनेक प्रकारके ध्यान जगह-जगह गुरुओंके पास करते रहे, पर उन्हें किसीमें भी वास्तविक सुख-शांति नहीं मिली। आखिर उन्होंने विपश्यना साधना शुरू की व बोधगया में उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ तभी से वे बुद्ध के नाम से विख्यात हुए। लोगोंको दुख से छुटकारा मिले और वे सुखी हों, इसलिए इस विधिको उन्होंने लोगोंके हितार्थ फैलाया। यह भारत से शुरू होकर बर्मा, लंका, चीन आदि देशोंमें फैली। पर बड़े दुःखके साथ कहना पड़ता है कि यह भारत में चार-पांच सदियोंमें ही लुप्त हो गयी। लोग चमत्कारों में पड़ गए और इस दुःख-निवारक विधि को भूल गए। बर्मा में यह अभी भी अपने मूल रूपमें व शुद्ध रूपमें गुरु-शिष्य परंपरासे चली आ रही है।

"विपश्यना" एक ऐसी साधना है जिससे मनकी शुद्धि होती है। इसका मतलब है अपने आपको विशेष प्रकार से देखना। हमेशा तो हम बहिर्मुखी ही रहे। अन्दर कभी देखा नहीं। यह विधि कहती है कि अन्दर की तरफ द्रष्टाभावसे देखो, भोगो नहीं और इस क्षण जो भी देखो उसमें समता बनाए रखो। साथ ही साथ अनित्य बोध भी बना रहे। इस क्षण की जो भी सच्चाई है उसे जानो। साथ ही वह परिवर्तनशील है यह भी ध्यान रखो। वर्तमानको जानो और उसी में रहो। यह मन शुद्ध करनेकी विधि है। यह दैनिक जीवन में भागना नहीं, बल्कि उसका सामना करना सिखाती है। इसके नियमित अभ्यास करने से क्रोध, लोभ व मोह दूर होता है। साथ ही दुख व असंतोषकी पुरानी गांठें खुलने व नई न बंधने देनेका काम होता है।

प्रकृतिका यह अटल नियम है कि जसे हमारे विचार होंगे वैसे ही विचारोंकी तरंगें हमारे पास आवेंगी। आप मेंसे बहुतों ने अनुभव किया होगा कि जब किसी पर गुस्सा होते हैं तब गुस्से के समय आस-पास के गुस्सेकी सभी तरंगे आपके पास आकर जताने लगती हैं। वैसे ही जब आप सबकी भलाई के लिए सोचते हैं तो आस-पासकी भलाई की सभी तरंगें आपके पास आकर आपको भलाई की तरफ ले जाती हैं और उस वक्त आपको बड़ा अच्छा लगता है।

सही धर्म वही है जो सभी लोगोंके लिए, सभी समय एकसा सुखप्रद हो। इस साधना से जो भी लाभ होते हैं वे इसी जीवनमें होने लगते हैं। जिस धर्म का इस जीवनमें ही फायदा मिले, वही सच्चा धर्म व सच्ची विधि है।

कई लोगोंकी मान्यता है कि अभी उम्र ही क्या हैं? बूढ़े होंगे तब यह सब करेंगे। मगर अक्सर यह गलत ही ठहरता है। उम्र अधिक होने पर शरीर भी कुछ अस्वस्थ हो जाता है। जब शरीर ही स्वस्थ न होगा तो कहाँ धर्म की साधना हो सकेगी? फिर इस साधना को जीवनमें उतारनेका भी तो समय चाहिए, जो नहीं मिल पाता।

विपश्यना साधना सबके लिए समान रूपसे कल्याणकारिणी है। अब तक करीब ८४ देशोंके हजारों लोगोंने शिविरोंमे भाग लिया है। पूना में सिर्फ पादरियोंका, लाडनूं (राज.) में सिर्फ जैन मुनियों व साध्वियोंके लिए शिविर लगे। राजस्थान सरकार ने जयपुर की केन्द्रीय जेलमें उस समय के १२०० कैदियों में से १५० खूंखार कैदियोंको चुनकर उनके लिए जेल में शिविर लगाए। उन कैदियोंको बड़ा लाभ हुआ। इनमेंसे कई कैदियों के अपने अनुभव विपश्यना पत्रिका में आए हैं।

इस विधि की शुरूआत आते-जाते स्वाभाविक सांसको देखने से की जाती है। तीन दिन तक सांस को देखकर मनको एकाग्र किया जाता है। नाक के किस भागको सांस छू रहा है ? गरम है या ठंडा है ? चौथे दिन से दसवें दिन तक शरीरके सब भागोंको सिर से पैर तक पैर से सिर तक शरीर की यात्रा करना सिखाया जाता है। इसमें कहीं गर्मी, कहीं सर्दी, कहीं दर्द, कहीं भारीपन, कहीं सनसनाहट, कहीं कुछ, कहीं कुछ होता रहता है। इन सबको समता से देखते रहो और प्रतिक्रिया न करो। भोगो नहीं, द्रष्टा बने रहो। अभी तक हमेशा बाहर ही देखते रहे, अन्दर कभी झांका नहीं। सो यह सब बड़ा अजीब सा लगता है। यही इस विधि की विशेषता है। शिविर समाप्त होनेके एक दो दिन पहले साधक अपने आपको बड़ा ही हल्का व प्रफुल्लित सा अनुभव करता है। यह मनको पवित्र व शुद्ध करनेकी बड़ी सरल विधि है। इससे मनके राग, द्वेष, मोह व घृणा दूर होती है। और आप स्वयं अनुभव करते हैं कि आपके विकार निकल रहे हैं। ये विकार हर मानवमें हैं। इसलिए यह विधि भी सभी मानवों के लिए बिना किसी जाति-पांति, संप्रदाय व देशोंके भेदभावके हर समय हर एक के लिए एक समान उपयोगी है।

इससे मानसिक व शारीरिक बीमारियाँ दूर होती हैं। मानव जब से पैदा हुआ है तब से, जब तक मर नहीं जाता तब तक सांस उसके साथ रहता है और सांस के सहारे इसका अभ्यास आरंभ होता है। इसी से यह विधि बड़ी वैज्ञानिक है। इस विधि को एक बार समझ लेने के बाद कहीं भी की जा सकती है। सोने से पहले व जागते ही, घूमते-फिरते जब मोका मिले कर सकते हैं। इसका अभ्यास नित्य-नियमित होना चाहिए तभी इसका लाभ मालूम हो सकते हैं। एक बार इसे सीख लेने पर फिर बिना गुरुके भी यह की जा सकती है।

एक सनातनी व हिन्दू परिवारमें जन्म लेने से बचपनसे ही रामायण व गीता पढ़ने की आदत मां ने डाली थी। बरसों पढ़ने पर भी गीता समझमें नहीं आ सकी। विपश्यना का शिविर करनेके बाद गीता समझ में आने लगी और ऐसा लगता है जैसे गीता तो थ्योरी है और विपश्यना उसका व्यवहारिक या प्रैक्टिकल पक्ष है।

विपश्यना अनुभव करनेकी विधि है। जब तक कोई शिविरमें न बैठे, उसको इसकी पूरी जानकारी नहीं हो सकती। सभी लोग इससे लाभ उठावें, यही भावना है।

सबका भला हो ! सबका कल्याण हो ! सबका मंगल हो !

पुष्प वाटिका, गोखले मार्ग,
अजमेर, (राज.)

साधकों के उद्‌गार

जयपुरसे श्री. कन्हैयालाल लोढ़ा लिखते हैं, "आप तन, मन, जिन रूपविजातीय तत्वों, विकारोंसे रहित हो, स्वस्थ रहें ! आप सदैव प्रसन्न रहते हुए धर्म का वितरण दीर्घ काल तक करते रहें, यही शुभ भावना है। मेरा स्वास्थ्य साधारण चल रहा है। विपश्यनामें दिन-प्रतिदिन उत्तरोत्तर अधिक रस आ रहा है। शांति, मुक्ति, (स्वाधीनता) प्रीतिभक्तिकी अनुभूति बराबर बढ़ रही है। विपश्यना ही जीवन है। विपश्यना रहित जीवन, जीवन नहीं मृत्यु है। व्यर्थ है ऐसा अनुभव बार-बार होता है। पूरा जीवन राग-द्वेष रूप प्रतिक्रिया रहित हो विपश्यना में बीते और कर्मों के उदय रूप जो अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति आती है उसका बिना भोग किए सदैव समतामय प्रसन्नतामें रहूँ, ऐसी भावना है। इसीमें जीवनकी सार्थकता व सफलता लगती है।

आपने धर्मका सैद्धान्तिकके साथ क्रियात्मक मार्ग बताया, आपकी इस कृपा का आधार शब्दोंमें व्यक्त नहीं कर सकता। मैं जब प्रथमबार अजमेरमें विपश्यनामें बैठा था तब आपने फरमाया था कि आश्रव, संवर निर्जरा उदीरणा, मुक्ति, निर्वाणका विपश्यनासे वास्तविक रूपका अनुभव होगा। सो आपके उक्त कथनकी सत्यता का साक्षात्कार हो रहा है। आपकी कृपा से इनका स्वरूप व रहस्य दिन-प्रतिदिन स्पष्ट होता जा रहा है। साथ ही प्रसन्नता भी बढ़ती जा रही है। मैं देख रहा हूँ, धर्म लोकातीत बनाता है। इस लोक परलोक से परे ले जाता है। अतः विपश्यना को लोक संबंधी ज्ञान की आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती है। उसे इस लोक व परलोक से कोई लेना-देना नहीं रहता है। वह तो केवल लोक द्रष्टा रहता है। धर्म देहातीत अवस्था का अनुभव करता है। इस प्रकार विपश्यक शरीर और संसारसे अतीत अवस्था का अनुभव कर सर्व दुखोंसे शरीरमें रहते हुए ही सदाके लिए छुटकारा पा जाता है। मैं देख रहा हूँ कि धर्म का फल तत्काल मिलता है और अक्षुण्ण रहता है। धर्म की महिमा निराली ही है। धर्म रहित जीवन दुखियारा जीवन है, व्यर्थ है।"

जर्मनीका साधक मानफ्रेड कोड लिखता है, "मैं विपश्यना साधनाका अभ्यास करते हुए बहुत प्रसन्नता महसूस करता हूँ। इससे मेरे शारीरिक, मानसिक और सामाजिक व्यवहारमें बहुत सुधार हुआ है। मैंने कालेज में समाज सेवाकी शिक्षा ली, लेकिन व्यवहार जगत में उतरने पर देखा कि यह सारी सेवाएँ केवल ऊपरी स्तर पर होती हैं। इसलिए सहायताका खेल मात्र है। तो मेरे मनमें हुआ कि कोई ऐसी विद्‌या सीखूं जिससे लोगोंकी गहराईं से सेवा हो सके। पहले अपने आपकी गहराईं से सेवा कर सकूं तब औरोंकी गहराई से कर सकूंगा। उन दिनों मैं योग और ध्यानके संपर्क में आया। अमेरिका और यूरोप के कई आध्यात्म केन्द्रोमें गया और रहा। अन्ततः भारत आया और पांडिचेरीके श्री अरविन्दो आश्रम में रहने लगा और वहीं आसन, जप और ध्यानका अभ्यास करता रहा। वहाँ रहते हुए एक मित्र से चर्चा हुई जिसने कि मुझे विपश्यनाकी ओर जानेकी प्रेरणा दी। और उसके बारेमें बहुतसी अच्छी बातें बतायी। मेरा यहाँ आनेका एक मात्र उद्देश्य यही था कि मैं अपने बारेमें सही सच्चाईं जानूं और सही मानेमें एक अच्छे मानवका जीवन जी सकूं। मैं जानता हूँ कि यह एक क्रमिक विकासकी विद्या है और धीरे धीरे ही इस पर आगे बढ़ना होगा। लेकिन मेरे लिए यही महत्वपूर्ण है। मैं सचमुच इस आश्चर्य जनक विद्‌याको पाकर अपने आपको बहुत संतुष्ट प्रसन्न महसूस करता हूँ। मैं जानता हूँ कि इस मार्ग पर बहुत सी बाधाएँ आनेवाली हैं परन्तु पुरुषार्थ ही तो करते रहना है।

विलेपारले, बम्बई के श्री महासुख मोहनलाल खांधार जो कि भारत और अमेरिका के विश्व विद्यालयोंमें इंजिनियरिंगकी ऊंची शिक्षा प्राप्त हैं और जो कि विगत २० वर्षों से किसी कंपनी में ऊंचे ओहदे पर काम कर रहे हैं, लिखते हैं, "मेरे बड़े पुण्य से मुझे पू. गुरुदेव और विपश्यनाका संपर्क हुआ और तब से मेरा जीवन धन्य हो गया है। क्रोध, और वासनाओंके विकार बहुत बड़ी मात्रामें दूर हुए हैं। यद्यपि भयका विकार अब भी बना हुआ है। लेकिन मुझे विश्वास है कि मैं बिना प्रतिक्रिया किए हुए विपश्यना की इस महान विद्या के सहारे इस विकार को भी साक्षीभावसे देखते रह सकने में सफल हो सकूंगा। इस विद्याकी जो मुझ पर कृपा हुई है उसे मैं शब्दोंमें व्यक्त नहीं कर सकता। जीवनके मूल्योंमें अभिवृद्धि हुई है। मानस कृतज्ञता से भर उठा है।

बम्बई के व्यापारी श्री मोहनलाल धनजी शाह, जो कि अब तक विपश्यना के ८ शिविर ले चुके हैं और नित्य सुबह-शाम नियमित अभ्यास करते है, लिखते हैं कि इस साधनासे मेरे स्वास्थ्य में बहुत सुधार हुआ है मेरा क्रोध बहुत कम हो गया है। जीवनमें बहुत शांति आयी है और समता भी। विपश्यना के अभ्यासके कारण ही मैं अपने मन पर अब कन्ट्रोल रख पा रहा हूँ। शरीरके रोगोंसे जो मुक्ति मिली है वह तो विपश्यना का उप फल मात्र है। परन्तु मुख्य बात तो यह कि मन काबू में आ गया। अब मैं अपने मनका मालिक हूँ। जीभ का गुलाम नहीं रह गया। जब चाहूं, जो भोजन बिना कठिनाई के छोड़ सकता हूँ। यह विपश्यना का ही प्रभाव है कि अब मैं अखंड ब्रह्मचर्य का पालन आसानी से कर पा रहा हूँ।

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–११० ००७.
की मंगल कामनाओं सहित
↓

दूहा धरम रा

सदा जुद्ध करतो र वै, ले वै बैर्‌या जीत।
बणै बीर पुरुसारथी, या संता री रीत ॥१॥
यो हि संत रो जुद्ध है, यो हि पराक्रम घोर।
काम क्रोध अर मो सूं, राखै मुखड़ो मोड़ ॥२॥
राग द्वेष अभिमान रा, बैरि बड़ा बलवान।
कुण जाणै कद सिर चढै, पीड़ित कर दे प्राण ॥३॥
संत सदा जाग्रत र वै, करै न रंच प्रमाद।
भव-भय-बंधन काट कर, चखै मुक्ति को स्वाद ॥४॥
अन्तरमन रण खेत मंह, बैरी भेळा होय।
एक एक नै कतल कर, संत बिजेता होय ॥५॥
सतत् जूझतो ही र वै, संत देह परयन्त।
हनन करै अरिगण सकल, हुइ जावै अरहन्त ॥६॥

दोहे धर्म के

काम क्रोध मदहोश में, जीवन दिया गँवाय।
जागे विमल विपश्यना, जनम सुफल हो जाय ॥१॥
जब देवे भवचक्र को, धर्म चक्र से काट।
तो विमुक्ति निर्वाणका, वैभव जगे विराट ॥२॥
चित समरांगण जो करे, सतत् घोर संग्राम।
ऐसे जाग्रत संत को, है आराम हराम ॥३॥
सदा जूझता ही रहे, करे अथक पुरुषार्थ।
इस श्रमजीवी श्रमण को, होय प्रकट परमार्थ ॥४॥
विपश्यना की आग में, जल जाएँ सब पाप।
अन्तरतम शीतल बने, दूर होंय भव ताप ॥५॥
द्वेष द्रोह दुर्भाव से, चित संतापित होय।
बरसे अमृत धर्म का, तन मन शीतल होय ॥६॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३. दूरभाष : ८६
मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपुर, नासिक–४२२ ००७. टेलिफोन : ८८२५१ ● वार्षिक शुल्क रु. १०/- आजीवन शुल्क रु. १००/-

"विपश्यना" 10/84

Licence No. NS 18
Licensed to post without pre-payment

पो. र. नं. NS(M) 16/84

प्रेषक :
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र)